PROCEEDING

NATIONAL SEMINAR

(Under U.G.C. Grant)

on

INDIAN PERFORMING ARTS: PROSPECTS, PERSPECTIVES & CHALLENGES

(11th & 12th February, 2018)

: Organized by :

DEPARTMENT OF TABLA

Faculty of Performing Arts

The Maharaja Sayajirao University of Baroda,

Opp. Sursagar Lake, Vadodara. 390001. (Gujarat) | **Email : fpaseminar2018@gmail.com**

प्राचीन गुरू-शिष्य परम्परा एवं आधुनिक विद्यालयीन संगीत शिक्षा : खोज तथा दृष्टिकोन

डीन प्रो.डॉ. अजय अष्टपुत्रे
दि महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी
तबला विभाग, वडोदरा

सुवर्णा घोलकर
शोधार्थी, तबला विभाग
दि महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, वडोदरा

सार-संक्षेप

भारतीय संगीत प्राचीन, सर्वव्यापक, वैविध्यपूर्ण, सर्जनशील तथा सादरीकरण की कला है। संगीत ये विद्या और कला का मिश्रण है। विद्या सिखायी जाती है और कला संस्कारित करती है। गुरू अपनी विद्या से शिष्यों को कला के संस्कार देते हैं। इसी कारण संगीत शिक्षा में गुरू-शिष्य परम्परा सर्वश्रेष्ठ है। मानव के सांस्कृतिक विकास के साथ संगीत शिक्षा स्वरूप में भी स्वाभाविक परिवर्तन होते गये। संगीत शिक्षा संबंधी पुराने सिध्दांतों में बदलाव हुए। जो संगीत शिक्षा कोठों या संस्थानिकों की आश्रय में थी, वो आज विद्यालय, महाविद्यालय, विद्यापीठों के माध्यम से पूरे समाज पर छा गयी है। गुरू-शिष्य परम्परा की शिक्षा का परिवर्तित स्वरूप, विद्यालयीन शिक्षा का महत्त्व तथा सभी संगीत शिक्षा पध्दतियों का अध्ययन कर उत्तमोत्तम घटकों से अपेक्षित आदर्श शिक्षणप्रणाली पर प्रकाश डालने का प्रयास इस प्रपत्र में किया गया है।

शोध-पत्र

प्राचीन भारतीय संस्कृति का मूल आधार अध्यात्म। अध्यात्म में ही गुरूकुल संकल्पना का उगम हुआ। प्राचीन राजदरबारों में योगी, ऋषि, साधूओं का महत्त्वपूर्ण स्थान था। उनके आश्रम में समाजसंबंधी सभी विषयों से अनुलक्षित शिक्षा मिलती थी। धर्म, अर्थ, राज्य, समाज्य – इतिहास, भूगोल, वेदविद्या, शस्त्रविद्या, युध्दकला, जीवन, तत्वज्ञान, साहित्य, संगीत सभी विषयों की शिक्षा शिष्य अपने गुरूकुल में रहकर एक छत के नीचे ही ग्रहण करते थे। आश्रम की इस गुरूकुल संकल्पना से ही स्वतंत्र संगीत गुरूकुलों का निर्माण हुआ। इन गुरूकुलों में शिष्य गुरूसेवा तथा गुरूआज्ञा का पालन कर गुरू की इच्छा से, गुरू चाहे तभी, गुरू चाहे उतना ही संगीत का ज्ञान लेकर लगभग बारह वर्षों तक संगीत की शिक्षा ग्रहण कर लेते थे। उसके बाद खुद की एकांत साधना का कालावधी पूरा कर समाज के सामने कलाप्रस्तुती करने की अनुमती मिलती थी। आम तौर पे गुरूकुल परम्परा की शिक्षा का यह स्वरूप था।

'शिक्षा' का मूलभूत अर्थ व्यक्ती की क्षमता का विकास करना, उसके व्यक्तित्व की घडन करना।[१] संगीत की परिभाषा में इसे तालीम कहते है और इस महत्त्वपूर्ण व्यक्तिगत प्रशिक्षण तालीम को , 'गुरू-शिष्य परम्परा' यह अभिधान है। इस गुरू-शिष्य परम्परा की सीना-ब-सीना तालीम की मूल्यों ने आज पूरे जगत् पर अधिराज्य किया है।[२] गुरू शास्त्र, तंत्र सिखाता है, विद्या प्रदान कर कला संस्कारित करता है। इसमें *'ये हृदयिचे ते हृदयि घातिले'* ऐसी नैसर्गिक संक्रमण प्रक्रिया की अनुभूती है।

अठारहवी शताब्दी में संगीत शिक्षा को प्रतिष्ठा नही थी। संगीत संस्थानिक या कोठों के आधार से ही जीवित था। संगीत सीखना, सुनना, गाना, बजाना एक नैतिक अध:पतन माना जाता था। इसी

कारण संगीत शिक्षा को गुरू-शिष्य परम्परा व्यतिरिक्त दूसरा पर्याय नही था।[३] रागोंकी बंदिशें, तालोंकी रचनाएँ इनका आदान-प्रदान मुखोद्गत पध्दती से होता था। लिखीत या ध्वनिमुद्रित स्वरूप में शिक्षा नही मिलती थी। गुरूमुखी विद्या केवल कुशाग्र स्मरणशक्ती, एकाग्रता, रियाझ से ही जतन की जाती थी। गुरू की पेशकश, निकास तथा कला की ओर देखने की दृष्टि गुरू-शिष्य परम्परा शिक्षा पध्दती में मिलती थी।

संगीत विद्या एक पीढी से दूसरी पीढी में हस्तांतरित करने की प्रक्रिया से 'घराना' संकल्पना का उदय हुआ। अलग प्रांत के अलग कलाकारों ने गायन-वादन-नृत्य की कुछ विशेष मूल्यों का स्वीकार किया तथा शास्त्र बनाया। कठोर साधना कर उन विशिष्ठ मूल्यों का अगली पीढी में प्रचार प्रसार किया। कम से कम तीन पीढीयों में उनका कलाविचार दृढ हुआ तो उस कलाविचार को 'घराना' संज्ञा प्राप्त हुई। गुरू-शिष्य परम्परा की शिक्षा पध्दती में गंडाबंधन प्रथा भी प्रचलित थी। इस प्रथानुसार गुरू गंडाबंध या दीक्षित शिष्य को अपने घराने की विद्या मन से प्रदान करता है और शागिर्द वर्षोंतक मेहनत, रियाझ, तपश्चर्या से अपने घराने का नाम रोशन करते है तथा विद्या जतन कर अगली पीढी में उदार मन से विद्या संक्रमित करता है। संगीत की घरानों ने भारतीय संगीत शिक्षा को सम्भालने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।[४] स्वातंत्र्यपूर्व काल में राजनीती थी। संस्थानिक, नबाब कलाप्रेमी थे। वे गुणिजन तथा विद्वान संगीत कलाकारोंको राजदरबार में सम्मान के साथ नियुक्त करते थे। ये गुणिजन अपनी कला की माध्यम से घरानों का नाम उज्वल कर अपनी शिष्य-परम्परा बढाते थे।

बीसवी शताब्दी का आरम्भ संगीत कला की दृष्टि से क्रांति का युग था। १९०१ में पं विष्णु दिगंबर पलुस्कर द्वारा लाहोर में अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडल की स्थापना हुई। संगीतोद्धारक विष्णुद्वय – पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर तथा पं. विष्णु नारायण भातखंडे ने संगीत को सीमित दालन कक्षाओंसे बाहर निकालकर आम जनता के लिए सुलभ बनाया। समाज में संगीत को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडल ने अभ्यासक्रम बनाकर परिक्षापद्धती शुरू कर दी। इन विष्णुद्वयों ने स्वरलिपी-काललिपी संशोधित की। रागों की बन्दिशें, नृत्य के तोडे, तबले की रचनाएँ लिपीबध्द करना आसान हुआ। बीसवी शताब्दी में सामाजिक तथा राजकीय बदलाव के कारण संगीत शिक्षा पध्दती में बडा परिवर्तन हुआ। स्वातंत्र्योत्तर काल में लोकतंत्र प्रस्थापित होने के बाद संगीत कला पर सभी लोगों का अधिकार हुआ।

जनैर्जनहितार्थाय जनानामेव स्थापितम्।
लोकतंत्रं भारतस्य वसुधायां विराजते।।

ठीक इसी तरह संगीत सभी लोगोंके मन में विराजमान हुआ। बीसवी सदी में औद्योगिक क्रांती होने के बाद ध्वनीमुद्रण, माईक्रोफोन, लाऊडस्पीकर तंत्र की मदद से गायक-वादक की आवाज दूर तक पहूंचने लगी। कलाकार बहुसंख्य श्रोताओं के सामने अपनी महफिल पेश करने लगे। आकाशवाणी, दूरदर्शन की माध्यम से घर बैठे अच्छा संगीत सुनने की संधी प्राप्त हुई। अभिजात गायन-वादन का प्रचार एवं प्रसार होने लगा। विकसित मुद्रणतंत्र से संगीत की पुस्तकें उपलब्ध हुई। रेकॉर्ड, कॅसेट, सी.डी., मोबाईल फोन, संगणक, इंटरनेट इन सुविधाओं से संगीत का ज्ञान सुलभ हुआ। रेकॉर्डिंग स्टुडीओ, समृध्द ग्रन्थालयें तथा सेमिनार, कार्यशालाओं के आयोजन से गायन-वादन

का सखोल विचार, अध्ययन, अध्यापन इनका पूरा स्वरूप ही बदल गया। संगीत संमेलन, संगीत महोत्सव/ समारोह, संगीत परिषदों का आयोजन होने लगा। इसी प्रकार संगीत विद्या और कला सार्वभौमिक एवं समृध्द हो गयी।

आज संगीत का सुवर्णकाल है। सभी शहरों में संगीत विद्यालय, महाविद्यालय, विविध संगीत संस्थाएँ हैं। विद्यापीठों में गायन-वादन-नृत्य के पाठ्यक्रम पर आधारित शिक्षा तथा संगीत में बी.ए., एम्.ए., पी.एच्.डी. करने की सुविधा हो गयी। इसमें एक साथ बीस-पच्चीस विद्यार्थियों को मर्यादित समय में शिक्षा मिलती है। जीवनोपार्जन की भागदौड के कारण आज का विद्यार्थी चाहने पर भी दस-बारह घंटे संगीत का अभ्यास नही कर सकता। इससे अच्छा कलाकार बनना तो नामुमकिन है। लेकिन प्रतिभावान छात्रों को खोज निकालने में तथा आम लोगों को संगीत के प्रति रूचि उत्पन्न करने में विद्यालयीन शिक्षा उपयुक्त है, उच्चकोटि के कलाकार निर्माण करने के लिए पूर्णतः योग्य नही है। प्राचीन गुरू-शिष्य परम्परा की पुन:स्थापना भी आज के युग में असम्भव है। अतः इन दोनों के बीच का मार्ग चुनकर दोनो शिक्षणप्रणालियों का मिश्रण आज की गुरू-शिष्य परम्परा में अलग रूप में सजीव हो रहा है। घरानों की संकुचित दायरों से निकलकर संगीत शिक्षा उदार दृष्टिकोन में विकसित हो रही है।

वैयक्तिक अथवा सामुहिक प्रात्यक्षिक शिक्षा, रेकॉर्डिंग श्रवण, ग्रन्थों का अभ्यास, शास्त्र का अवलोकन, सेमिनार, कार्यशाळा, साक्षात्कार, संगणकीय शिक्षा पध्दती, संगीत पाठों के सप्रयोग व्याख्यानों की सी.डी. आज उपयोग में लायी जा रही है। आधुनिक युग में शास्त्रज्ञों के संशोधन ने गुरू-शिष्य की दूरता पर भी विजय

प्राप्त किया है।[५] टेलि तथा व्हिडिओ कॉन्फ़रन्सिंग, स्काईप, याहू, गुगल द्वारा संगीत की दूरस्थ शिक्षा पध्दती भी आज उपलब्ध है।

इन सभी संगीत शिक्षा पध्दती शिष्य को ज्ञानमहर्षि बना सकेगी, लेकिन कलामहर्षि बनाने के लिए गुरू संस्कार की आवश्यकता है। ये गुरूतत्त्व है। गुरूशैली का अनुकरण कर उस ज्ञानभांडार को तपस्या से गुरूशैली में ही प्रस्तुत करने से अच्छे कलाकार बन सकते है किन्तु ये भी सत्य है कि जब शिष्य गुरूशैली आत्मसात कर अपनी अलग विचारधारा से स्वतंत्र शैली निर्माण करता है तब वह स्वप्रकाशित बडा कलाकार हो सकता है।[६] संगीत शिक्षाप्रणाली अनुकरण से जतन की जाती है, नवनिर्मिती से प्रवाही बनती है और विश्लेषण से शास्त्रशुध्द तथा शास्त्रबध्द रहती है। नवनिर्मिती के लिए पुराने घरंदाज विचार का बीज होना चाहिए, यह कहने का मेरा प्रयास है।

पाद-टिप्पणियाँ

१. डॉ. श्रीरंग संगोराम, रियाझ २००० शिवानंद संगीत प्रतिष्ठान अंक पृ.२४
२. पं. सुरेश तळवलकर, आवर्तन, पृ.१७
३. पं. किरण फाटक, संगीत निबंधावली, पृ.२७
४. डॉ. आबान मिस्त्री, पखावज और तबला के घरानें एवं परम्परायें, पृ.१४
५. आचार्य गिरीशचंद्र श्रीवास्तव, संगीत कला विहार नवंबर २०१५, पृ.२३
६. पं. सुधीर माईणकर, तबला – वादन कला और शास्त्र, पृ.२८३

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. पं. सुधीर माईणकर, तबला – वादन कला और शास्त्र, प्रकाशक अ.भा.गां.म.मंडल, मिरज, २०००
२. डॉ. आबान मिस्त्री, पखावज और तबला के घरानें एवं परम्परायें, स्वरसाधना समिती मुम्बई प्रकाशन, द्वितीय संस्करण २०००
३. पं. अरविंद मुळगावकर, तबला, पॉप्युलर प्रकाशन, मुंबई, तृतीय संस्करण २०१६
४. पं. सुरेश तळवलकर, आवर्तन, राजहंस प्रकाशन, पुणे, द्वितीय संस्करण २०१५
५. पं. आमोद दंडगे, सर्वांगीण तबला, भैरव प्रकाशन, कोल्हापूर, चतुर्थ संस्करण २०१७
६. पं. मधुकर गोडसे, संगीतशास्त्र परिचय, प्रकाशिका रंजना गोडसे पुणे, तृतीय संस्करण १९८४
७. पं. मधुकर गोडसे, संगीत अलंकार शास्त्र व कला मार्गदर्शन, मधुरंजन प्रकाशन १९८८
८. पं. किरण फाटक, संगीत निबंधावली, संस्कार प्रकाशन, मुंबई, तृतीय संस्करण २००९
९. पं. किरण फाटक, संगीताचे शैक्षणिक मानसशास्त्र, संस्कार प्रकाशन, मुंबई, प्रथम संस्करण २०१२
१०.संगीत कला विहार, अ.भा.गां.म.मंडल प्रकाशन, नवंबर २०१५
११. रियाझ २०००, शिवानंद संगीत प्रतिष्ठान, अक्षरमुद्रण, कल्याण

THE MAHARAJA SAYAJIRAO UNIVERSITY OF BARODA

सत्यं शिवं सुन्दरम्

PROCEEDING

INTERNATIONAL SEMINAR

on

"Relevance of Performing and Visual Arts in Contemporary Society": A Perspective

(5th & 6th January, 2019)

ISBN : 978-81-939778-0-4

Organized by :

DEPARTMENT OF DANCE

(In association with University Grants Commission)

Faculty of Performing Arts

The Maharaja Sayajirao University of Baroda,

Opp. Sursagar Lake, Vadodara 390001 (Gujarat)

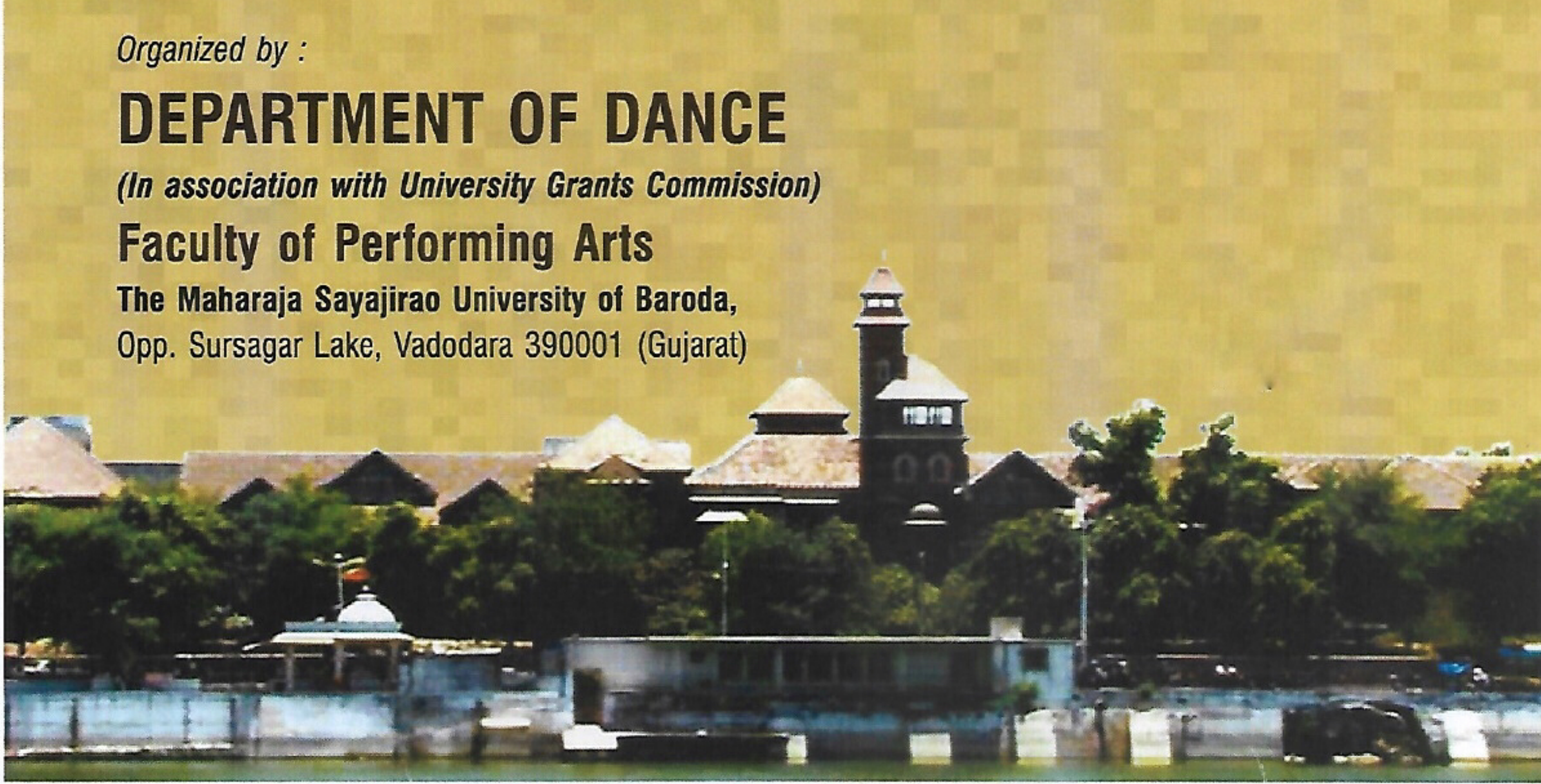

सांप्रतकालीन संगीत में तबलावादक का स्थान

डीन प्रो.डॉ. अजय अष्टपुत्रे
दि महाराजा सयाजीराव
युनिवर्सिटी
तबला विभाग वडोदरा

सुवर्णा घोलकर
शोधार्थी तबला विभाग
दि महाराजा सयाजीराव
युनिवर्सिटी वडोदरा

सार-संक्षेप

भारतीय संगीत में तबलावाद्य की सफर लगभग ४०० साल पुरानी है। इस सफर में तबलावाद्य की बनावट के साथ वादन विकास भी बड़ी मात्रा में हुआ। विकास के परिणाम स्वरुप आज भारत में तबला को सबसे प्रमुख चर्मवाद्य ऐसा लौकिक प्राप्त हुआ है।तबला वाद्य का बहुश्रूत विकास यशप्राप्ति तथा इस तबला को सम्माननीय स्थान मिलने में अनेक दिग्गज प्रतिभावान तबलावादकों का बहुत बड़ा योगदान है। इस रिवायत को स्वतंत्रवादन तथा साथसंगत दोनों अंगों को अत्युच्च सांगितीक तथा कलात्मक स्तर पर निभाकर इन श्रेष्ठ तबलावादकों ने भारतीय संगीत में सम्मान तथा उच्च स्थान प्राप्त किया है।

शोध-पत्र

संगीत की हर एक विधा में ताल का प्रयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। जैसे साहित्य में छन्द का मूलभूत स्थान होता है ठीक इसी तरह संगीत में ताल का अस्तित्व स्वाभाविक है।

'तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोर्धञ्ज स्मृतः।
गीतं वाद्यं तथा नृत्तं यतस्ताले प्रतिष्ठितम्।'

-'संगीत रत्नाकर - पंचमस्तालाध्याय'।

गायन-वादन-नृत्य की त्रिवेणी का आधार 'ताल' है। भारतीय संगीत की तालवाद्यों में तबला वाद्य सक्षम समृध्द उपयुक्त सर्वोत्तम लोकप्रिय तालवाद्य है। उत्तर भारतीय संगीत में सभी संगीत प्रकारों की कुशल साथसंगत करनेवाला तालवाद्य तबला है। प्राचीनकाल में तबलावादक का स्थान 'साथसंगतकार' तक ही सीमित था। प्रमुख कलाकार की तुलना में इन संगीतकारों को अवर स्थान दिया जाता था इसके श्राव्य अनुभव तथा सबूत सर्वश्रुत हैं। पुराने रेकॉर्डिंग्ज् में तबला साथसंगत की आवाज कम सुनाई देती थी। इसका कारण आधुनिक प्रौद्योगिकी का अभाव ऐसा दिया जाता था। किन्तु अगर यह यंत्रणा नही थी तो प्रमुख गायक की आवाज बडी मात्रा में कैसे सुनाई देती थी? इसका असली कारण यही है कि गायक के माइक्रोफ़ोन से ही तबला संगत की आवाज सुननी पडती थी। आज के तबलावादक अच्छी ध्वनि प्रणाली के बगैर संगत शुरू ही नही करते हैं। प्रमुख कलाकार के बराबरी में ही आज तबला संगतकार का ज़िक्र किया जाता है। बालगंधर्व का गाना सुनने जितने लोग आते थे उतने या उससे भी ज्यादा रसिक प्रेक्षक उस्ताद अहमदजान थिरकवाँ खाँसाहब की सुश्राव्य संगत का आस्वाद लेने उपस्थित रहते थे। रविशंकरजी के साथ उ० अल्लारखाँ बिरजू महाराजजी के साथ पं किशन महाराज जैसे महान संगतकारों को सुनने के लिए लोग भीड करने लगे। इस तरह तबलावादकों की लोकप्रियता बढने लगी। उनका अवर स्थान अब महत्त्वपूर्ण स्थान में बदल गया।

आज स्वरवाद्य के कार्यक्रम में यदि तबलावादक कर्तृत्ववान तथा बहुत लोकप्रिय हो तो प्रमुख कलाकार को भय रहता है और वह तबला वादक के प्रभाव में ही वादन करता है। रसिक श्रोता भी जोड़.आलाप सुनने के बगैर तबला कब शुरू होगा इस पर ध्यान रखते हैं। कभी.कभी इस स्थिति में प्रमुख कलाकार तिरोहित हो जाता है।

सूक्ष्मता से देखे तो पुराने जमाने में संगत करते समय ठेका लगाने का तरीका वर्तमान से अलग ही था। अब श्रोताओं की दखल लेने से तबलावादक भी ज्यादा ही स्वतंत्रता से बजाने का प्रयास करते हैं। इसमें यह भी महत्वपूर्ण बात है की ख्याल की संगत करते वक्त उत्स्फूर्तता एवं प्रबल वादन इन पर नियंत्रण करके संयम तथा परिपक्व संगत ही मनभावन होगी।

साथसंगत में अपना स्वतंत्र स्थान निर्माण करने के साथ आज तबलावादकों में इतनी उन्नति हुई है कि दूसरे स्वरवाद्यों के समान तबला का भी स्वतंत्र वादन हो रहा है। तीनताल के साथ झपताल एकताल रूपक सवारी इन प्रचलित तथा मत्त रूद्र जयताल जैसे अप्रचलित तालों में भी बड़े आसानी से पेशकार कायदे रेले गते टुकड़े चक्रधार जैसे सभी वादनप्रकार अच्छे ढंग से बजाए जाते हैं। इसी तरह स्वतंत्र रूप से बजने वाला वाद्य प्रस्थापित होने के बाद गायक तथा अन्य वादकों को उनकी दखल लेनी ही पड़ी।

पुराने काल में स्वरवाद्य के मुकाबले तबला वादक को बहुत कम कालावधी दिया जाता था। आज तबला वादक की उन्नति के बाद इस कालावधी में भी बढ़त हो गई है। उस जमाने में संगीतकारों को सिर्फ ठेका अथवा प्रमुख कलाकारों को विश्राम देने के लिए १-२ आवर्तन बजाने की अनुमति थी। किन्तु आज सवाल.जवाब लढंत का बाज विकसित होने के बाद तबलावादक को प्रमुख कलाकार के बराबर स्थान मिलने लगा है।

लयकारी प्रधान अथवा मुश्किल लयकारी का वादन जब वाद्यसंगीत में होने लगा तभी तबलावादकों से ठीक वैसी ही लयकारी तथा उसी प्रकार के वादन की अपेक्षा श्रोताओं से होने लगी। आज तबलावादक यह अपेक्षापूर्ति करके बहुत ही लोकप्रिय हो रहे है। गायक तथा वादक साथसंगत के लिए उतने ही सक्षम तबला वादक को लेना पसंद करने लगे हैं इसका मतलब साथसंगत के लिए अच्छा तबलावादक लेने का विचार प्रचलित हो गया है।उस्ताद झाकिर हुसैन जिन्होने अपनी अलगसी पहचान बनाई है ऐसे महान कलाकार साथसंगत के लिए जब प्रमुख कलाकार के बाजू में बैठ कर बजाते हैं तभी लोग उन्हें भी प्रमुख कलाकार के स्वरूप में सुनते हैं।

आज के युवा वादक भी वादन में आड कुआड बिआड लयकारी सुलभता से करते हैं। गायक तथा वादक स्वर के माध्यम से जो लय का काम करते हैं उसका जवाब देने की तैयारी आज के तबलावादकों में हैं। आज तंत्र भी विकसित हुआ है शायद इस वजह से वादकों के अभिजात वादन स्तर पर इसका असर हुआ है। कभी.कभी प्रबल वादन के बदले माइक्रोफोन की आवाज बढ़ा कर पेशकश होने लगी है। आज के तबलावादकों को स्वतंत्र तबलावादन में गहराई बोलाक्षरों की सच्चाई शुद्ध काव्य दाया ॅं. बाया ॅं का संतुलन पेशकार कायदे रेले गते टुकड़े इनका क्रम परंपरागत गतों का सौंदर्य खाली.भरी निकास तंत्र लय की समझ सूरेलता इन सब सांगितीक मूल्यों पर ध्यान देकर उनका तंत्र से मेल करने की आवश्यकता है।

आज बड़े.बड़े सभागृह में भव्य मंच पर श्रोताओं से बहुत अंतर पर जब बड़ी महफिलों में वादन पेश किया जाता है तब वाहव्वा तथा श्रोताओं के चेहरे पर समाधान देखने नहीं मिलता। ऐसी स्थिति में वादक भी गहराई कलात्मकता छोड़कर तालियों के पीछे पड़ने की संभावना होती है।

आज तबला के सादरीकरण में एक नई संकल्पना आई है वह है 'तालवाद्य कचेरी॰। इसमें उत्तर भारतीय तथा दक्षिण भारतीय तालवाद्यों का अंतर्भाव होता है . जैसे तबला पखावज घटम् मृदंग मडल ताविल आदि। तालवाद्य कचेरी मतलब विभिन्न छंद तथा लय का विविध

तालवाद्यों पर अनुकरण। हम देखते हैं कि ज्यादातर इसका संयोजन प्रायः तबलावादक ही करता है। इसमें तबलावादक प्रमुख भूमिका निभाता है। इससे तालवाद्य तथा संगीत के जगत मे एवं रसिकों के मन में तबलावादक का स्थान बढ रहा है। तबला के कारण बाकी तालवाद्यों को भी प्रतिष्ठा मिलने लगी है।

आज बहुत सारे तबला वादक व्यावसायिक हो रहे हैं। बड़ी.बड़ी कंपनियाॅं इनका प्रमोशन करती है। प्रसारमाध्यम तथा व्यावसायिकता के मायाजाल में ऐसा भी हो सकता है कि कभी. कभी अच्छे कलाकार छुपे ही रहते हैं। अंत में इतना ही कहना है कि आज के इन होनहार रियाझी तबलावादकोंने लोकप्रियता के पिछे की भागादौडी में परंपरा की मूल्यों का जतन करना भी आवश्यक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१ॱ पंॱ सुधीर माईणकर तबला - वादन कला और शास्त्र प्रकाशक अॱभाॱगांॱमॱमंडल मिरज २०००
२ॱ डॉॱ आबान मिस्त्री पखावज और तबला के घरानें एवं परम्परायें स्वरसाधना समिती मुम्बई प्रकाशन द्वितीय संस्करण २०००
३ॱ पंॱ अरविंद मुळगावकर तबला पॉप्युलर प्रकाशन मुंबई तृतीय संस्करण २०१६
४ॱ पंॱ सुरेश तळवलकर आवर्तन राजहंस प्रकाशन पुणे द्वितीय संस्करण २०१५
५ॱ पंॱ आमोद दंडगे सर्वांगीण तबला भैरव प्रकाशन कोल्हापूर चतुर्थ संस्करण २०१७
६ॱ संगीत कला विहार अॱभाॱगांॱमॱमंडल प्रकाशन अक्तूबर २०१६

ISSN 2349-4654

Vol. 7 | Issue-1 | April 2019

Naad – Nartan Journal of Dance & Music

Refereed & Peer Reviewed Annual Bi-Lingual Journal

Chief Editor: Prof. Ravi Sharma

28, Bharti Artist Colony,

Vikas Marg, Delhi-110092

Former Dean & Head, Deptt. Of Music,

M. D. University, Rohtak – 124001 (Haryana)

Former Director Incharge, School of Performing and Visual Arts,

IGNOU, Maidan Garhi, New Delhi

E-mail: naadnartanjdm@gmail.com

Mob: 09873107335

Naad – Nartan Journal of Dance & Music

Vol. 7 Issue-1 April 2019

ISSN: 2349-4654
नाद-नर्तन जर्नल ऑफ डांस एण्ड म्यूज़िक
वर्ष : 7, अंक-1, अप्रैल 2019

फर्रूखाबाद घराने की प्राचीन बन्दिशों का सौंदर्यात्मक स्वरूप

सुवर्णा घोलकर
शोधार्थी, तबला विभाग, द महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी, वड़ोदरा

Paper recieved on : April 26, 2019, Return : April 27, 2019, Accepted : May 04, 2019

सार-संक्षेप

तबलावादन के क्षेत्र में विभिन्न घरानों के संस्थापक विद्वानों ने विशिष्ट मौलिक रचनाओं के निकास विधि में परिवर्तन करके उन्हें नया स्वरूप प्रदान किया। फलस्वरूप, अपनी निजी विशेषताओं के कारण एक-दूसरे से पृथक विभिन्न घरानें अतिस्तव में आए। इन घरानों में फर्रूखाबाद घराना सर्वसमावेशक है। फर्रूखाबाद घरानें के प्रवर्तक उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ साहब ने लखनऊ घराने के प्रवर्तक उस्ताद बख्शू खाँ से विधिवत् शिक्षा पाकर अपनी प्रतिभा एवं सृजनशक्ति के आधार पर लखनऊ घराने की वादन शैली में परिवर्तन किया। नए ढंग की असंख्य रचनाएँ करके अपनी नई परम्परा आरंभ की, जो फर्रूखाबाद घराने के नाम से प्रसिद्ध हुई। उनका बाज लखनऊ की तरह न तो नृत्य से प्रभावित था, न तो दिल्ली-अजराडे की तरह बन्द और न ही पंजाब-बनारस की भाँति अधिक खुला था। रचनात्मक सौंदर्य, दायाँ-बायाँ के सभी निकास एवं स्वतंत्र वादन के सभी वादन प्रकारों का समावेश होने के कारण फर्रूखाबाद घराना समृद्ध हुआ। 'गत' रचनाप्रकार फर्रूखाबाद घराने की सर्वश्रेष्ठ विशेषता है। फर्रूखाबाद घराने ने संगीत जगत को अनेक अद्वितीय वादक, मूर्धन्य कलाकार तथा प्रतिभावान रचनाकार प्रदान किए हैं। उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ, उस्ताद सलारी खाँ, उस्ताद चुड़ियावाले इमाम बख्श। इन फर्रूखाबाद के दिग्गजों की अनेक दर्जेदार गतें विद्वान बहुत आदर से बजाते हैं। इन दर्जेदार एवं रचना की दृष्टि से अप्रतिम गतों को प्रस्तुत करने में आज के कलाकार गौरव का अनुभव करते हैं। इन संरचनाओं का तथा विशेषताओं का सौंदर्यात्मक स्वरूप, विविध बुजुर्गों की विभिन्न गतों की बन्दिशों द्वारा समझना, सीखना, परखना इस प्रपत्र का उद्देश्य हैं, ताकि हर एक तबलावादक इन सौंदर्यपूर्ण पारंपरिक रचनाओं का अध्ययन करें, जो उनकी कलात्मक उन्नति के लिए अनिवार्य है। मूलत: इस शोध-पत्र को लिखने के लिए माध्यमिक स्रोतों का सहारा लिया गया है।

मुख्य शब्द : घराना, फर्रूखाबाद, बन्दिश, गत, सौंदर्य

शोध-पत्र

फर्रूखाबाद घरानें की परम्परागत बन्दिशों /गतों के सौंदर्यस्वरूप का परिशोध करने के लिए प्रथम 'बन्दिश', 'गत', 'घराना' इन संकल्पनाओं का संक्षेप में स्पष्टीकरण देना आवश्यक है।

तबले में 'बन्दिश' मतलब तालबद्ध रचना जिसमें प्रतिभा, संस्कार, नजर, नवता, घरंदाज काव्य इनका समावेश हैं। ''बंदिशकारों की नवीनता मूलत: परम्परा से जुड़ी होती है, बंदिश में से घरानेदार काव्य का ही संस्कार नए रूप में प्रकट होता है। ऐसा श्री सुरेश तलवलकर जी का मानना है।''[1] विस्तारक्षम बन्दिशों में पेशकार, कायदा, रेला, रौ, लड़ी इत्यादि और अविस्तारक्षम बन्दिशों में गत, टुकड़े, चक्रदार, परन आदि पूर्वसंकल्पित रचनाओं का समावेश हैं। पं. आमोद दंडगे के अनुसार ''भले ही तबले की सभी रचनाओं को बंदिश कहने में आपत्ति नहीं है फिर भी प्राचीन काल से अपने पूर्वजों से केवल पूर्व संकल्पित रचनाओं को बंदिश कहने का प्रावधान है। इसका कारण यह है कि ये रचनाएँ काव्य की तरह बद्ध की हुई है। अर्थात् कोई परिवर्तन के बगैर ठीक वैसी की वैसी बजाई जाती हैं।'' (विस्तारक्षम रचनाओं का स्वरूप विस्तार में बदलता है)[2]

'गत' एक सर्वांगसुंदर काव्य है। प्रकृति के गतिमानता की अनुभूति देनेवाली, सम से पहले पूर्ण होकर पुनरावृत्त होनेवाली, तिहाईसहित अथवा तिहाईरहित, विविध मुलायम-अधिक नाद तथा लयबद्ध संचलन से युक्त तबले की काव्यमय रचना 'गत' कहलायी जाती है। '''गत' में हमें अति सुंदर काव्य की अनुभूति होती है। उसका कारण यह, कि 'गत' रचना में शब्द-संगति, शब्द-लालित्य, स्वरमय आवर्तनात्मक आंदोलन, अनुप्रास का कलात्मक प्रयोग उसके चलन की समबद्धता एवं लयबद्धता तथा प्रासंगिक तुक का प्रयोग, इन गुणों का न्यूनाधिक मात्रा में इस्तेमाल करके 'गत' बनती है। किसी भी 'गत' में उपर्युक्त गुण जितनी ज़्यादा मात्रा में होते हैं, उसी मात्रा में 'गत' ज़्यादा काव्यमय एवं सुंदर लगती है।''[3]

विभिन्न वादनशैली तथा विभिन्न वादनप्रणाली के आधार पर उत्तर भारतीय संगीत में तबले के छ: घराने हैं—दिल्ली, अजराडा, लखनऊ, फर्रूखाबाद, बनारस, पंजाब। इन घरानों की निर्मिती दो प्रमुख बाजों से हुई हैं—बन्द बाज, खुला बाज। बन्द बाज में उँगलियों का स्वतंत्र रीति से प्रयोग एवं

दायाँ-बायाँ से मर्यादित आँस के कारण इसमें गतिमानता होती है। इसमें विस्तारक्षम रचनाओं की प्रधानता है। दिल्ली अजराडा घरानों ने बन्द बाज का स्वीकार किया। खुले बाज में दायाँ-बायाँ से गूँजयुक्त ध्वनि एवं उँगलियों के साथ-साथ पूरे पंजे का प्रयोग होता है। इसमें पूर्वसंकल्पित रचनाओं की विपुलता है। लखनऊ, फर्रूखाबाद तथा बनारस घरानों ने खुले बाज का स्वीकार किया। पंजाब घराना खुले बाज का पूरी तरह स्वतंत्र घराना है।

फर्रूखाबाद घराना लखनऊ घराने का शागिर्द घराना होते हुए भी बोलों के निकास और रचना भेद से फर्रूखाबाद ने अपनी अलग सी पहचान बनायी। फर्रूखाबाद घराने की वादनशैली किनार एवं लव दोनों के सम्मिश्र उपयोग से बनी है और न तो बहुत जोरदार एवं न ही बहुत मुलायम है। इसमें दिल्ली तथा पूरब बाज का संयोग है। ''फर्रूखाबाद बाज में मुक्त प्रहारयुक्त बोलों के व्यवहार के साथ-साथ दाहिने तबले पर दिल्ली बाज की भाँति निगृहीत और अर्धनिगृहीत प्रहारयुक्त बोलों का भी समावेश दिखाई देता है। इसलिए इसमें पूरब बाज की प्रधानता के साथ-साथ दिल्ली का भी कुछ प्रभाव दिखाई देता है।''[4] इस घराने में स्याही, लव, चाँटी, बायाँ की मींड, घुमक इन सभी अंगों का समावेश, दायाँ-बायाँ के सभी निकास एवं पेशकार, कायदे, रेले, रौ, गतें, टुकड़े, परन, चक्रदार इन स्वतंत्र वादन के सभी वादन प्रकारों का समावेश है। ''इस घराने की चर्चा करते हुए अहमद जान थिरकवा ने कहा था कि—'फर्रूखाबाद का तबला शुद्ध तबला है। दूसरे घराने की भाँति उसमें ताशा के बोल, नक्कारा के बोल, ढोल तथा खंजरी के बोल इत्यादि नहीं मिलते। विविध साजों के बोलों से तबले का विस्तार तो अवश्य होता है किन्तु शुद्धता खत्म हो जाती है।' जो भी हो किन्तु फर्रूखाबाद का तबला मधुर, संयत एवं संतुलित है इतना मानना पड़ेगा।''[5]

लखनऊ घराने के प्रवर्तक उस्ताद बख्शू खाँ ने फर्रूखाबाद के प्रतिभाशाली उस्ताद विलायत अली खाँ के वादन, सर्जन, शिक्षण इन गुणों को देखकर उन्हें दिल खोलकर सिखाया। उस्ताद बख्शू खाँ से विधिवत ज्ञान लेकर उस्ताद हाजीसाहब ने अपनी प्रतिभा और सूझबूझ से लखनऊ की वादनशैली में मौलिक परिवर्तन करके नए शैली को जन्म दिया। उन्होंने वादन में लव, चाँटी एवं स्याही का यथार्थ प्रयोग करके अपनी वादनशैली के अनुरूप अनेक अप्रतिम गतों की रचना की, जिससे फर्रूखाबाद को एक पृथक घराने की प्रतिष्ठा मिली। तबलावादन के क्षेत्र में उस्ताद हाजीसाहब की गतें इतनी प्रतिष्ठित हैं, कि अन्य घरानों के वादकों ने इन गतों के आधार पर जोड़ गतों की रचना की है। उस्ताद हाजीसाहब के गुरुपुत्र तथा शिष्य अपने युग के कुशल तबलावादक एवं श्रेष्ठ रचनाकार उस्ताद सलारी खाँ साहब ने उस्ताद हाजीसाहब की गतों के जवाब, चलन एवं असंख्य दर्जेदार बन्दिशों से फर्रूखाबाद को समृद्ध किया। फर्रूखाबाद घराने ने संगीत जगत को उस्ताद हाजी विलायत अली खां, उस्ताद निसार अली खां, उस्ताद हुसेन अली खां, उस्ताद सलारी खां, उस्ताद चुडियाँवाले इमाम बख्श, उस्ताद नन्हे खां, उस्ताद मसीत खां, उस्ताद करामतुल्ला खां, उस्ताद फैयाज हुसेन खां, उस्ताद शेर खां, उस्ताद मुनीर खां, उस्ताद अमीर हुसेन खां, उस्ताद गुलाम हुसेन खां, उस्ताद अहमदजान थिरकवाँ, उस्ताद शमसुद्दीन खां, पं. ज्ञानप्रकाश घोष आदि एक से एक दिग्गज वादक तथा रचनाकार प्रदान किए हैं। इस शोध-प्रपत्र में इन बुजुर्गों की बन्दिशों के सौंदर्यातत्वों का सोदाहरण विवेचन निम्नलिखित घटकों के आधार पर करने का प्रयास है।

1. काव्यात्मक सौंदर्य—बन्दिशों की भाषा—यमक
2. खाली—भरी का सौंदर्य
3. रचनात्मक सौंदर्य
4. नादसौंदर्य तथा निकास सौंदर्य—दायाँ-बायाँ का बन्द-खुला नाद, आँस, मींड।
5. गणित सौंदर्य।
6. ग्रह, जाति, यतिभेद, लयबंध।

बन्दिशों में सबसे पहले फर्रूखाबाद घरानें के प्रवर्तक उस्ताद हाजी विलायत अली खाँ साहब रचित चतुरश्र जाति की सीधी गत—

ताऽ धाऽ ×	घिडनग् तक्	घिडनग् तक्धाऽ	घिडनग् तक्।
घिडनग् तक्धाऽ 2	ऽड्धाऽघिडनग्	तकधाऽड्धा	दिंगदिना ।
किटतकतिंग 0	तिंनाकिटतक	तिरकिटत तक्ताऽ	कत्तिंकिडनग्।
घिडनग् तकधाऽ 3	ऽड्धाऽघिडनग्	तकधाऽऽड्धाऽ	दिंगदिना ।

काव्य की तरह इस गत में चार पंक्तियाँ है और हर एक पंक्ति की मात्रा संख्या समान है। इसमें यमक मिलता है। पहला और अन्तिम अक्षर स्वर है। आठवीं तथा छठी मात्रा में खाली का आभास है। छठी और चौदहवीं मात्रा पर कालान्तर के कारण आन्दोलन मिलता हैं। इसमें आड लयबंध

नहीं है। सरल रचना होते हुए भी बोलों की रचना बहुत सुंदर तथा कल्पक है। सुयोग्य निकास के साथ मध्य और उसकी दुगून में बजाने से बन्दिश की मधुरता का अनुभव होता है।

ऊपर निर्दिष्ट गत के जवाब में फर्रूखाबाद के उस्ताद सलारी खाँ साहब से निर्मित बन्दिश—

×	ताऽधाऽ	घिड्नग् तक्	धाऽघिडनग्	तक्घिडनग्।
2	तक्धाऽघिडनग्	तक्घिडनग्	धिरधिरघिडनग्	तिंनाकिडनग्।
0	तकटधाऽड्धाऽ	घिडनगधिनतक्	धिरधिरघिडनग्	तिंनाकिडनग्।
3	धिरधिरकत्धिर	धिरधिरघिडनग्	धिरधिरघिडनग्	तिंनाकिडनग्।

इस अप्रतिम जवाबी गत में उस्ताद सलारी खाँ साहब ने उस्ताद हाजीसाहब के बोलों की रचना में बड़ी कुशलता से बदलाव किया। गत की गतिमानता बढ़ाने हेतु 'घिडनगधिनतक्' धिरधिरकत् धिर धिरधिरघिडनग् इन अक्षरों की पंक्ति का सुयोग्य स्थानों पर प्रयोग करके रचना को और भी उच्च स्तर पर पहुँचा दिया और एक लाजवाब गत की निर्मिति हुई। यह गत मध्य तथा दुगून में गंभीरता के साथ जोरदार सम पे आती है।

फरद गत फर्रूखाबाद की विशेषता है। फरद का अर्थ अद्वितीय तथा अजोड। इसको 'एक्कड' भी कहा जाता है। ''उस्ताद अमीर हुसेन खाँकके मतानुसार फरद गत का अर्थ है जिन गतों का जोड़ा बनाना मुश्किल है।''[6]

फर्रूखाबाद के उस्ताद हाजीसाहब के शार्गिद उस्ताद चुडियाँवाले इमाम बख्श खाँ साहब की दुर्लभ और अद्वितीय फरद गत—

×	धिरधिरकत्	धिरधिरकत्	धिटधिट	धागेतिट ।
2	कड्धाकधि	किटधाऽ	किटतक	तकीटता ।
3	कतिटधा	धिंधाधेत्	तगेऽन्न धा	
×	गदगिन्	ऽऽगद	गिन्ऽऽ	गदगिन् ।
2	किटतक	धेत्ता	धाऽकिटतक	ताऽधेत् ।
3	तगेऽन्न	धागेतिट	दिंगनाना	किटतकदिंगड्।

इस फरद गत में बोलों के निकास महत्त्वपूर्ण हैं। वर्णों की योजना निकास को ध्यान में रखकर की गई है, ताकि गत बजाना आसान हो। गत की संपूर्ण रचना चतुरस्र जाति में है। विविध अक्षरों के प्रमाणबद्ध प्रयोग से सौंदर्यपूर्ण आंदोलननों का आनन्द मिलता है। 1, 2, 19, 23, 24 मात्राओं पर द्रुत, 3, 6, 10, 11, 13, 16, 20, 22 मात्राओं पर मध्य और 7, 9, 12, 17, 18 मात्राओं पर संथ गति का आभास होता है। बारह मात्राओं तक सीधे स्वरूप की रचना का एकाएक अलग मोड लेकर अचानक सम पर आने का तरीका अनाकलनीय एवं सुखद लगता है।

उस्ताद हाजीसाहब के सुपूत्र उस्ताद हुसेन अली खाँ साहब की खाली-भरी की गत—

×	धाऽतिट	घिडनग	धिनताऽ	टितकतान् ।
2	तकतकधिन्	तागेतिरकिट	तकतकधिन्	तागेतिरकिट ।
0	धात्रकधि	किटतक	गदिंऽग्ड धा	।
3	तकतकधिनतक	धिनतकतकतक	धिनतकधिनतक	तकतकधिनतक।
×	ताऽतिट	किडनग	तिनताऽ	तिटकतान् ।
2	तकतकधिन्	तागेतिरकिट	तकतकधि्	तागेतिरकिट ।
0	धात्रकधि	किटतक	गदिंऽग्ड धा	।
3	तकतकधिनतक	धिनतकतकतक	धिनतकधिनतक	तकतकधिनतक।

इस गत में त्र्यस्त्र और चतुरस्त्र जाति का मिश्रण है। 5 से 8 मात्रा तक त्र्यश्र जाति का प्रयोग किया है। 13 से 16 मात्रा द्रुत लय है। बोलों के अवगुंठन के कारण खाली-भरी होकर गत बड़ी सुंदरता से सम पर आती है।

खलिफा उस्ताद मुनीर खाँ साहब की त्र्यस्त्र जाति की अप्रतिम बन्दिश—

धाऽतिटघिड नगधिनतक् तिटघिडनग धिनधिनागिन ।
×

तकिटधात्रक धिटगद्दींऽऽ धाऽतिटघिडनगधिनतक तिरकिटतकतक्डाँ
2

धाऽतिटघिडनगधिनतक् ताऽतिटघिडनगधिनतक्।
0

धाऽतिटघिडनगधिनतक् ताऽतिटघिडनगधिनतक्।
3

धाऽतिटघिडनगधिनतक् ताऽतिटघिडनगधिनतक्।
0

धाऽतिटघिडनगधिनतक् तिरकिटतक्तक्डाँ। ।
4

कम बोलों का उपयोग करके अप्रतिम रचना बनायी है। 1 से 6 मात्राओं तक बराबरी की लय और 7 से 16 मात्राओं तक उन्हीं वर्णों का द्रुत लय में प्रयोग किया है। सभी बोल दायाँ-बायाँ पर बराबर बजते हैं। इस छोटी-सी गत से रचनाकार की प्रतिभा का अंदाज आता है।

उस्ताद अहमदजान थिरकवाँखां साहब के वादन से एक मधुर बन्दिश—

धिंक्डधिंधा ऽत्रकधिंधा घिडनगतिरकिट गदिगननागेतिट ।
×

घिडाऽनधिनगिन धागेत्रकतिनाकिन धिनगिनधागेधिन गिनधागेधिनगिन।
2

तिंक्डतिंता ऽत्रकतिंता किडनगतिरकिट कतिकननागेतिट ।
0

घिडाऽनधिनगिन धागेत्रकतिनाकिन धिनगिनधागेधिन गिनधागेधिनगिन।
3

यह खाली-भरी की गत ठाय और दुगुन में बजती है। चतुरस्त्र जाति में बाँधी इस गत की अन्तिम चार मात्रा में बोलसमुह चमत्कृतपूर्ण करते हैं। इसमें बायाँ की घुमार तथा मींडकाम का विशेष महत्त्व होने के कारण अधिक माधुर्य का अनुभव होता है।

खलिफा उस्ताद अमीर हुसेन खाँ साहब की सब अकाल तिहाई गत—

ऽध्धागेनकत घिनकतघिनतिना।
X

ऽधाकिटतकदीं ताकिटतकधिरधिरधिरकत्।
0

ऽताकिटतकतिरकिट तागेतिरकिटतक तागेतिटकताऽन्।

ऽध्धातिरकिटतकतिरकिट धाऽऽघेंऽतधाऽ।
0

ऽध्धातिर किटतकतिरकिट धाऽऽघेंऽतधाऽ।
3

ऽध्धातिरकिटतकतिरकिट धाऽऽघेंऽतधाऽ।[7]
4

इस गत में तालियों के स्थान अनुच्चरित होकर भी जोरदार होने की विशेषता दर्शायी है। विशिष्ट स्थनों पर आघात न होने के कारण ऐसी गत को अनाघात गत भी कहा जाता है। यह अनाघात गत, एक नादसमूह के तीन पंक्तियों से (तिहाई से) खूबसूरती से सम पर आती है।

बहुत सारी अभिजात बन्दिशों से फर्रूखाबाद घराना समृद्ध है। मंझदार गत, तिपल्ली गत, दोमुखी गत, मिश्र–खण्ड जाति की गतें, दुधारी–तिधारी–चौधारी गतें इनके अलावा और भी कई फर्रूखाबाद की विभिन्न गतप्रकारों की रचना प्राचीन काल से अनेक प्रतिभावान विद्वानों ने की हैं। इस शोध–पत्र में कुछ गतों का सोदाहरण विवेचन देकर सौंदर्य तत्त्वों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। मुझे विश्वास है, कि तबलाप्रेमी इसे पढ़कर फर्रूखाबाद की हर बन्दिश का सौंदर्य जानने में रूची रखे तथा वादन में इनका प्रयोग करें ।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. तलवलकर, सुरेश, आवर्तन, राजहंस प्रकाशन प्रा.लि., संस्करण 2015, पुणे, पृ. 49
2. दंडगे, आमोद, पदव्युत्तर तबला, भैरव प्रकाशन, कोल्हापुर, संस्करण 2018, पृ. 160
3. माईणकर, सुधीर, तबला–वादन कला और शास्त्र, अखिल भारतीय गांधर्व महाविद्यालय मंडल, मिरज, संस्करण 2000, पृ. 170
4. शुक्ल, योगमाया, तबले का उद्‌गम, विकास और वादन शैलियाँ, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, संस्करण 2003, पृ. 191–192
5. मिस्त्री, आबान ई., पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएँ, स्वर साधना समिति, मुम्बई, संस्करण 2000, पृ. 159
6. मुळगांवकर, अरविंद, तबला, पॉप्युलर प्रकाशन प्रा.लि., मुंबई, संस्करण 1999, पृ. 165
7. मुळगांवकर, अरविंद, आठवणींचा डोह, पॉप्युलर प्रकाशन प्रा.लि. मुंबई, संस्करण 2006, पृ. 167